EDUZONE: International Peer Reviewed/Refereed Multidisciplinary Journal (EIPRMJ), ISSN: 2319-5045
Volume 5, Issue 2, July-December, 2016, Impact Factor: 4.189, Available online at: www.eduzonejournal.com

कालिदास की कृतियों में वर्णित अस्त्र-शस्त्र

मेजर (डॉ.) बेला मलिक

संस्कृत विभाग, सेठ मथुरादास बिनानी, राजकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, नाथद्वारा

प्राकृतिक दृश्यों एवं मानवीय चरित्रों के विश्लेषण में सिद्ध हस्त, प्रणय-निवेदनों के मर्मज्ञ शिल्पी कालिदास को जितनी सफलता श्रंगार के विषय-विवेचन में मिली है इतनी युद्ध वर्णनों एवं द्वन्द्व के उत्साहवर्धक अंकनों में नहीं मिली है। कालिदास के युद्ध वर्णन सुन्दर एवं सूक्तिपरक होते हुए भी यथेष्ट रूप से ओजपरक एवं उत्साहवर्धक नहीं बन सके हैं। उनमें 'भवभूति' के 'उत्तर रामचरित' एवं 'नारायण भट्ट' के 'वेणीसंहार जैसे रणोन्माद जागृत करने वाले चित्रणों का अभाव है। श्री एस. ए. सावनिस के विचार से ऐसा संभवतः कालिदास की वैदर्भी शैली के कारण भी था जो भवभूति एवं नारायण भट्ट की गौड़ी शैली की तरह युद्ध-परक भावों की अभिव्यक्ति में उतनी सक्षम न थी। गौड़ी शैली की कर्कश एवं दीर्घ स्वरों वाली शब्दावली वस्तुतः युद्ध के तुमुलघोष एवं अस्त्र-शस्त्रों के विध्वसंक वातावरण से काफी सामंजस्य भी रखती है। तथापि कालिदास के वर्णनों में उपस्थित विवरण गुप्तकालीन सैन्य-व्यवस्था एवं अस्त्र-शस्त्रों से संबंधित उस सामग्री की पुष्टि करते हैं जिसका निर्देशन तत्कालीन सिक्कों, भित्ति चित्रों, मृण्मूर्तियों तथा कला एवं शिल्प में रूपायित मिलता है।

गुप्तकाल की धनुर्विद्या के अध्ययन हेतु उपलब्ध सामग्री में इलाहाबाद स्तम्भ लेख में समुद्रगुप्त की प्रशंसा करते समय हरिषेण ने लिखा है कि सम्राट का शरीर अनन्य अस्त्रों के प्रहार से सुशोभित था, उसमें बाण का भी उल्लेख है- तस्य विविध समरसत आवतर्ण दक्षस्य स्वभुज बल पराक्रमैक-बन्धौः पराक्रमाँकस्य परशु, शर, शंकु, शक्ति, प्रासारिक, तोमर, भिन्दिपाल, नाराच, वैतारिकद्यानेक प्रहरिण.... (फ्लीट कार्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम, ग्रंथ 3, 1963)

गुप्तकालीन सिक्कों में धनुष-बाण के अनेकानेक उदाहरण प्राप्त हैं। समुद्रगुप्त के समय धनुर्धारी प्रकार बहुत दुर्लभ था पर बाद के राजाओं के काल में बहुत प्रसिद्ध रहा। यहाँ राजा दायें हाथ में तीर एवं बायें हाथ में धनुष पकड़े हैं। 'व्याघ्रनिहन्ता' प्रकार में राजा बायें हाथ (ए. एस. अल्तेकर दि गुप्ता क्वाइन्स इन दि बयाना होर्ड, प्लेट 5-15) में धनुष पकड़े हैं तथा दायें हाथ से उसकी प्रत्यंचा कान तक खींच रहा है और कूदते हुए चीते पर वार कर रहा है (ए. एस. अल्तेकर दि गुप्ता क्वाइन्स इन दि बयाना होर्ड, प्लेट 9-10)। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय 'धनुर्धारी प्रकार बहुत लोकप्रिय था, प्रमाणस्वरूप केवल 'बयानानिधि' में ही इस वर्ग के 798 सिक्के मिले हैं। इस प्रकार में साधारणतः राजा के बायें हाथ में धनुष एवं दायें में तीर है, पर कभी-कभी इसके ठीक विपरीत भी है। इस प्रकार के 11वें उप-विभाग में तरकश का भी उल्लेख है। 'व्याघ्रनिहन्ता' प्रकार-उप विभाग 'डी' एवं 'घुड़सवार' प्रकार- उप विभाग 'सी' 68 में धनुष-बाण का अंकन है। कुमारगुप्त के धनुर्धारी प्रकार में एक लेख भी मिलता है -

जयति महीतलमेकः श्री कुमारगुप्तः सुधन्वी।

वही लेख, पुनः स्कन्द्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार में भी है। कुमारगुप्त के युग में प्रचलित 'सोने का घुड़सवार प्रकार' एवं 'तांबे का धनुर्धारी प्रकार भी अध्ययन के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त II. बुद्धगुप्त, विष्णुगुप्त, वैन्यगुप्त एवं प्रकाशादित्य के सिक्कों में भी भारतीय धनुर्विद्या की सुंदर झांकियाँ मिलती हैं। गुप्तकालीन मूर्तियों में भी इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। देवगढ़ में दशावतार मंदिर में 'राम एवं लक्ष्मण आश्रम में' लक्ष्मण द्वारा सूर्पनखा की नाक विदीर्ण करना एवं 'अहिल्या उद्धार' जैसे दृश्य हैं, जिसमें धनुर्विद्या की बहुत अधिक सामग्री मिलती है। उत्तरप्रदेश में अहिच्छित्रा से प्राप्त एक मृगमयी प्रतिमा में युधिष्ठिर एवं जयद्रथ का रथ युद्ध अंकित है जहाँ तीर एवं धनुष द्वारा युद्ध हो रहा है। धनुष का स्पष्ट एवं सुन्दर अंकन है।

धर्नुविद्याः-

कालिदास के समय में बांस (रठुम), ताल, दारू (लकड़ी), शार्ग (सींग) तथा धातु आदि पदार्थ धनुष बनाने के काम में लाये जाते थे। प्रत्यंचा (धनुष की डोरी), मूर्ण (लता, विशेषतः मौर्वी-प्रत्यंचा), सूती धागे, स्नायु आदि से बनाई जाती थी। धनुष एक मोड़, दो या तीन मोड़ के अनुसार कई प्रकार के होते थे। इस समय के सिक्कों पर अंकित धनुषों में पांच-पांच मोड़ तक देखने को मिलते हैं। कभी-कभी दो अलग टुकड़ों के धातु की सहायता से जोड़ कर धनुष बनाया जाता था। धनुष को अलंकृत करने के विचार से उसमें धातु के बने छल्ले भी लगाए जाते थे। गुप्तकालीन योद्धा बड़े ही कुशल धनुर्धर होते थे जो दोनों हाथों से धनुष-बाण चलाने में प्रवीण थे। कभी-कभी धनुष का भार इतना अधिक होता था कि धर्नुधर की सहायता के लिये अन्य लोगों की भी आवश्यकता होती थी।

"धनुष" की सामान्यतया व्यवहृत संज्ञा "धनु" थी। कुमार कार्तिकेय ने युद्ध में शत्रुओं द्वारा छोड़े गये सभी बाणों को अपने धनु से कान तक खींच कर छोड़े गये बाणों से शीघ्र ही छिन्न-भिन्न कर दिया-

देवेन मन्मथरिपोस्तनयेन गाढमाकर्ण कृष्टमभितो धनुराततज्यम्।
बाणानसूत निशितान्युधि यान्सुजैत्रांस्तैः सायका विभिदिरे सहसा सुशरे।।

(कु.सं./17/22)

ताल से बने धनुष को "कार्मुक" कहते थे। यह रथिनों का प्रिय धनुष था। बाण प्रायः विषाक्त बनाये जाते थे। कुमार कार्तिकेय एवं तारक असुर के साथ हुए युद्ध में अपने रथों पर सुदृढ़ रूप से आसनस्थ महारथी कार्मुक-संधान से विगत प्राण होकर भी जीवित से प्रतीत होते थे-

रथिनो रथिभिर्बाणैर्हृतप्राणा दृढासनाः।
क्षतकार्मुकसंधानाः सप्राणा इव मेनिरे।।

(कु.सं./16/46)

धनुष का एक अन्य रूप "कोदण्ड" लोकप्रिय 'चाप' की लकड़ी से बनाया जाता था। सीता स्वयंवर में राम ने जिस चाप अथवा कोदण्ड का खंडन किया था वह इसी प्रकार का धनुष था। तारक ने कुमार के साथ युद्ध में जिस धनुष का उपयोग किया था, कालिदास ने उसे भी कोदण्ड कहा है-

कर्णान्तिमेत्य दितिजेन विकृष्यमाणं।
कोदण्डमेतदभितः सुषुवे शरौधाम्।
व्योमाग्णे लिपिकरान्किरणप्ररोहैः।।
सान्द्रैरशेषककुभां पलितकरिष्णून्।।

(कु.सं. 17/20)

पूर्णतया बांस से बने धनुष को 'द्रुन' कहते थे। इसी तरह सींग से बने धनुष का नाम 'शार्ग' था। यह बड़ी घोर टंकार करता था। पश्चिमी देशों के साथ युद्ध में घुड़सवार सेना की धूल से अस्तमित कोलाहल को रघु ने अपने धनुष की टंकार से शांत किया था-

सङ्ग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत।।

(रघु./4/62)

'शरासन' जैसा कि शब्दार्थ से स्पष्ट है, सभी धनुषों का सामान्य पर्याय था। शाकुन्तल में इन्द्र का सारथी मार्तण्ड राजा दुष्यन्त से असुरों के विरूद्ध अपना शरासन उठाने का अनुरोध करता है-

कृता शख्यं हरिणा तवासुराः।
शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।।
प्रसाद सौम्यानि सतां सुहृज्जने।
पतन्ति चक्षूषि न दारुणाः शरा।।

(अभि.शा./6/29)

रथों पर एक से अधिक धनुर्धर बैठकर चलते थे और युद्ध में वे अपने बाणों की वर्षा से भीषण उत्पात मचा देते थे। कार्तिकेय एवं तारक युद्ध में अनेक प्रकार के बाणों से सारा आसमान आच्छादित हो गया था। उसमें से बड़ा ही कर्कश स्वर चारों ओर फैलने लगा था-

विभिन्नं धन्विनां, बाणैर्व्यथार्तमिव विद्रलम्।
रराास विरस व्योमश्येनप्रतिरवच्छलात्।।

(कु.सं./16/12)

बाणः-

धनुर्वेद में बाणों के मुख्य दस भेद बताये गये हैं। कौटिल्य ने केवल पांच नाम दिए हैं - वेणु, शर, शलाका, दंडासन, नाराच। कालिदास ने इसमें से कुछ बाणों का उल्लेख किया है साथ ही अपने साहित्य में और भी कई प्रकार के बाणों की यथा प्रसंग चर्चा की है। बाण का कालिदास से पूर्व अनति प्रसिद्ध एक बड़ा ही मौलिक नाम पत्रिन् भी मिलता है जो बाण के पिछले भाग में मोर आदि के पंख एवं पत्तियां (अथवा पत्र) चिपका कर बनाया जाता था। बाणों में लगाये गये इस प्रकार के पंख इनके सीधे संधान तक पहुंचने में सहायता किया करते थे। इस प्रकार उनके भार के साथ-साथ वेग को भी संयमित रखते थे। भूधरनियन्ता इन्द्र ने रघु के विपरीत अपने 'पत्रिन्' प्रकार के ही अमोघ बाण का उपयोग किया था-

रधोरवष्टम्भमयेन पत्रिणा हृदि क्षतो गोत्रभिदप्यमर्षणः।
नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने धनुष्यमोघं समधत्त सायकम्।।

(रघु./3/53)

"आशुघ" बड़ा ही भयानक बाण था जो किसी भी वस्तु को शीघ्र (आशु) ही काटने में उपयोगी था। महासेनापति कुमार के धनुर्धरों ने दैत्यों का सिर अपने 'आशुघ' बाणों से इस सफाई से काट कर अलग गिरा दिया कि वहां रक्त की एक बूंद तक नहीं गिरी -

बाढवपूंषि निर्भिद्य धन्विनां निघ्नतां मिथः।
अशोणितमुखा भूमिं प्राविशन्दूरमाशुगाः।।

(कु.सं. 16/9)

पुनः

निर्भिद्य दन्तिनः पूर्व पातयामासुराशुगाः।
पेतुः प्रवरयोधानां प्रीतानामाहवोत्सवे।।

(कु.सं. 16/10)

इस प्रकार के बाण पहिले तो हाथियों पर उनका शरीर बेधने के लिए चलाये जाते थे तत्पश्चात् गजारूढ़ सैनिकों के सिर भी इसी से साफ कर दिए जाते थे। 'बाण' प्रत्येक प्रकार के तीर के लिए एक सामान्य शब्द था जो सभी कवियों एवं लेखकों द्वारा प्रयुक्त किया गया है। तारकासुर ने बाणों के तीव्र प्रहार से स्वयं अदृश्य होते हुए भी देवताओं की सेना को इस प्रकार आवृत्त कर दिया जैसे सूर्य अपनी किरणों के प्रसार से पर्वत शिखर को आच्छादित कर लेता है-

बाणैः सुरारिधनुषः प्रसृतैरनन्तै- निर्घोषभीषितभटो लसदंशुजालैः।
अन्धीकृताखिलसुरेश्वरसैन्य ईश- सूनुः कुतोऽपि विषयं न जगाम् दृष्टेः।।

(कु.सं. 17/21)

'पृष्तक' वर्तमान कांटेदार बाणों की तरह एक विशिष्ट कोटि का विच्छेदक बाण था- जो धनुष से छूटने के साथ ही शत्रुओं के वक्ष में विंध जाता था-

अप्यर्घ मार्गे परवाणलूना धनुर्भृतां हस्वतां पृषत्काः।
संप्रापुरेवात्मजवानुवृत्त्या पूर्वार्धमार्गैः फलिभिः शरव्यम्।।

(रघु. 7/45)

'सायक' भी बाण का एक प्रकार था। भगवान शिव अपने रूद्र रूप में 'पिनाक' उठाने पर 'सायक' का संधान करते थे। इन्द्र के साथ युद्ध में रघु ने अपने धनुष पर स्वनामांकित 'सायकों का संधान किया था -

भुजे शचीपत्रविशेषकांक्षिते स्वनामचिह्न निचखान सायकम्।।

(रघु. 3/55)

अग्निपुराण में बाण की बड़ी ही सुन्दर कथा मिलती है। कहते हैं कि जब वृत्रासुर के साथ युद्ध में इन्द्र ने वज धारण किया था तो उसके खड्ग, यूथ, रथ एवं शर आदि चार भाग हो गये थे। इस प्रकार शर भी एक तरह से वज्र का ही त्रुटिवॉंश है। कुमार के सेनापतित्व में देवताओं के साथ युद्ध में इन्द्रादि के तीक्ष्ण बाणों के प्रत्युत्तर में तारक ने स्व नामांकित एवं अग्नि की तरह जलते हुए बाणों का प्रहार किया था -

तान्प्रज्वलत्फलमुखैर्विषमैः सुरारि-
नामांकितैः पिहितदिग्गगनान्तरालैः।
आच्छादितस्तृणचयानिव हव्यवाह-
श्चिच्छेद सोऽपि सुरसैन्यशराञ्शरौघैः।।

(कु.सं./17/4)

अर्धचन्द्राकृति के बाण को, जिसका प्रयोग प्रायः गर्दन उड़ाने के लिये होता था, 'शिलीमुख' कहते थे। स्वामी कार्तिकेय के अर्धचन्द्राकार बाणों से कटे हुए दैत्यों के मुण्ड गिद्ध गण अपने पंजों में लेकर आसमान में उड़ने लगे -

शिरांसि वरयोधांनामर्धचन्द्रहतान्यलम्।

आदधाना भृशं पादैः श्येना व्यानशिरे नभः।।

(कु.सं./16/28)

इसी प्रकार रघुवंश में भी इसका उल्लेख मिलता है-

शिलीमुखोत्कृत्तशिरः फलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेव।
रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्या रराज मृत्योरिव पानभूमिः।।

(रघु. 7/49)

'भल्ल' किसी बांस या लकड़ी में लगे हुए पत्तीदार (धारयुक्त) बाण को कहते थे। रघु ने 'भल्ल' कोटि के बाणों से अपने शत्रुओं के दाढ़ीयुक्त शिर काटकर सम्पूर्ण पृथ्वी को पाट दिया था -

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव।।

(रघु. 4/63)

बाण का "इषु" नाम वैदिक साहित्य से प्रयुक्त मिलता है। कालिदास ने 'विक्रमोर्वशीय' में इसका प्रयोग विशेषतया किया है। **"विशिख"** प्रकार के बाण का स्वरूप अनिश्चित है। इसका उल्लेख कुमारसम्भव में हुआ है। **'नाराच'** पूर्णतया लोहे का बना हुआ भयानक बाण था। पर्वतीय जातियों के साथ युद्ध में जब रघु द्वारा छोड़े गये "नाराच" शिला खण्डों पर गिरते थे तो उसमें से चिनगारियाँ निकलने लगती थीं

तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयेर्गणैरभूत्।
नाराच-क्षेपणीयाश्म-निष्पेषोत्पतितानलम्।।

(रघु. 4/77)

'क्षुरप्र' बड़ी ही तेज धार वाला बाण होता था। तारक ने कुमार पर अपने धनुष को कान तक खींचकर अनेकों 'क्षुरप्र' बाणों का प्रयोग किया जिसके भय से देवता लोग इधर-उधर भागने लगे -

दैत्योऽपि रोषकलुषो निशितैः क्षुरप्रै-
राकर्णकृष्टधनुरुत्पतितैः स भीमैः।
तद्भीतिविद्रुतसमस्तसुरेन्द्रसैन्यो
गाढं जघान मकरध्वजशत्रुसूनुम्।।

(कु.सं. 17/46)

पंख एवं अभिलेख युक्त बाण धनुर्धर के नाम से अंकित होते थे। रघु ने स्वनामांकित अनेकों बाणों का प्रयोग इन्द्र पर किया था -

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्।
अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्।।

(रघु. 3/35)

तारक के बाणों पर भी उसका नाम उत्कीर्ण था। यह प्रथा पुरानी थी। महाभारत के युद्ध में भी नामोल्लिखित बाणों का प्रयोग होता था। बाणों को विभिन्न पक्षियों के पंखों से सुष्ठु एवं सुंदर भी बनाते थे। रघु के मोरपंख युक्त एक ही बाण ने इन्द्र के रथ की ध्वजा काट दी थी -

जहार चान्येन मयूरपत्रिणा शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम्।
चुकोप तस्मै स भृशं सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव।।

(रघु. 3/56)

बाण चलाने की विभिन्न मुद्रायें :

कालिदास द्वारा वर्णित कथानकों में योद्धाओं की यद्यपि अनेक प्रकार की मुद्राएं मिलती हैं तथापि 'आलीढ' मुद्रा का धनुर्धर के प्रसंग में विशेषतया उल्लेख मिलता है। इन्द्र के साथ युद्ध में कान तक धनुष खींचकर आलीढ मुद्रा में खड़े हुए रघु, भगवान शिव की तरह प्रतीत हो रहे थे-

स एवमुक्तवा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम्।

अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः।।

(रघु. 3/52)

तलवारः-

धनुष-बाण के बाद अस्त्र-शस्त्रों में तलवार का स्थान आता है। गुप्तकालीन सैनिक, जैसा कि अजन्ता आदि के भित्ति चित्रों से परिलक्षित होता है। सीधी, हल्की, मुड़ी हुई, एक ओर अथवा दोनों ओर धारवाली, चौड़ी तथा सूक्ष्म धारवाली तलवारों से पूर्णतया परिचित थे। "खड्ग" बड़ी ही तेज धारवाली तलवार थी। कुमार के हाथों में "खड्ग" नामक तलवार शत्रुओं के रक्त से लथपथ धूल-धूसरित घटाटोप में बिजली की तरह चमक रही थी -

खड्गाः शोणित संदिग्धा नृत्यन्तो वीरपाणिषु।
रजोधने रणेऽनन्ते विद्युतां वैभवं दधुः।।

(कु.सं. /16/15), (17)

जब कुमार की सेना के हाथी पदाति सैनिकों को अपनी सूंड से उठाकर ऊपर फेंक देते थे तो हाथियों पर बैठे योद्धा तलवार से उनका सिर काटकर अलग कर देते थे -

आक्षिप्ता अपि दन्तीद्रैः कौपनेः पत्तयः परम्।
तदसूनहरन्खड्ग धातै स्वस्य पुरः प्रभो।।

(कु.सं./16/33)

इस प्रकार की तलवारों का उपयोग हाथियों के शुंड एवं पैर आदि काटने में भी किया जाता था। दुर्ग के सैनिक हस्ति सेना के बीच में घुस कर तलवारों से उनके पैर क्षत-विक्षत कर देते थे। जिससे घायल हुए हाथी चिंघाड़ कर पीछे भागने लगते थे। कुमार के सैनिक शत्रु सेना के हाथियों के पैर काटकर शीघ्रता से उनके धराशायी होने से पहिले ही वापिस आ जाते थे-

खड्गेन मूलतो हत्वा दन्तिनो रदनद्वयम्।
प्रातिपक्ष्ये प्रविष्टोऽपि पदातिर्निरगाद् द्रुतम्।।

(कु.सं./16/39)

करवालः-

इसका अर्थ है कि हाथ में पकड़ने वाला अस्त्र। 'कुमारसम्भव' में प्रचुरता से इसका उल्लेख मिलता है। जब तारक के धनुष बाण असफल हो गए तो उसने हाथ में करवाल लेकर कुमार पर प्रहार करना शुरू कर दिया -

भ्रूभंगभीषणमुखोऽसुरचक्रवर्ती सन्दीप्तकोपदहनोऽथ रथं विहाय।
कीडत्करालकरवालकरोऽसुरेन्द्र- स्तं प्रत्यधावदभितस्त्रिपुरारिसूनुम्।।

(कु.सं./17/48)

एक दूसरी प्रकार की तलवार 'असि' थी जिसका रघुवंश एवं कुमारसम्भव दोनों में उल्लेख मिलता है। कुमार के सैनिक शत्रु के हाथियों द्वारा पकड़ लिए जाने पर अपनी 'असि' के प्रहार से स्वयं को सुरक्षित करते थे-

करेण करिणा वीरः सुगृहीतोऽपि कोपिना।
आसेनाऽसूऽजहाराशु तस्यैष स्वयंमक्षतः।।

(कु.सं./16/40)

'शस्त्रि':-

परस्पर ढंग में प्रयुक्त होने वाली छोटी तलवार थी जिसे योद्धागण जमीन में खड़े होकर एक दूसरे पर हाथ से चलाते थे-

मिथः प्रसाहतौ वाजिच्युतौरूषा।
शस्त्रियायुयुधतुः कौचित्केशाकेशिभुजाभुजि।।

(कु.सं./16/35)

भालाः-

'प्रास' जिसका शाब्दिक अर्थ ही हाथ से फेंककर प्रहार करने वाला होता है। किसी लकड़ी या बांस के हत्थे में लगा होता था, जिसमें चौड़ी धार होती थी, बीच का भाग नुकीला एवं तेज होता था। यह घुड़सवारों तथा हस्ति सेना के योद्धाओं का प्रिय अस्त्र था। जब हाथी के सवार पदाति एवं अश्व सेना के बीच में आ गये तो अश्व सैनिकों ने उन पर 'प्रास' से प्रहार करना आरम्भ कर दिया-

क्रोधादभ्यापतद्दन्तिदन्तारूढाः पदातयः।
अश्वारोहा गजारोहप्राणान्प्रासैरपाहरन्।।

(कु.सं./16/29)

भल्ल' इसी का दूसरा प्रकार था। इसका फल पर्याप्त चौड़ा होता था जो दुधारा होने के साथ बीच में नुकीला एवं तेज होता था। यह भी किसी लकड़ी अथवा बांस की यष्टि में लगा होता था। कभी-कभी धातु की मुद्रिकायें भी 'भल्ल' एवं 'यष्टि' के जोड़भाग पर लगी रहती थीं जिस कारण से इसका भार भी बढ़ जाता था-

भल्लेन शितधारेण भिन्नोऽपिरिपुणाश्वगः।
नामूर्च्छत्कोपतो हन्तुमियेष प्रपतन्नापि।।

(कु.सं./16/44)

'कुन्त' इसी का एक प्रकार था। छोटी-छोटी पत्तियों की तरह इसकी धार भी सूक्ष्म होती थी। कुमार के सैनिकों के 'कुन्त' युद्ध की उस कालरात्रि में यमराज की जिह्वा की तरह चमक रहे थे -

कुन्ताश्चकाशिरे चण्डमुलसन्तो रणर्थिनाम्।
जिह्वाभोगा यमस्येव लेलिहाना रणाङ्गणे।।

(कु.सं./16/16)

'शूल' आधुनिक बल्लम को कहते थे। इसका आधुनिक रूप भारतीय 'बरछे' को मान सकते हैं। यह किसी धातु की यष्टि में लगा हुआ चौकोर, षटकोण अथवा अष्टकोणिक धारदार अस्त्र था। रघुवंश में इस प्रकार के अस्त्र का उल्लेख हुआ है -

दुर्णयोलवणः श्ली विशूलः प्रार्थ्यतामिति।

(रघु./15/5)

कवचः-

कौटिल्य ने शरीर के प्रत्येक अंग के लिए कवच का उल्लेख किया है। कालिदास ने कवच के अतिरिक्त इसे "कडकट" भी कहा है। तेजी से भागते हुए अश्वारोहियों के कवच हवा के वेग से हिलकर राजताली (ताड़) पत्रों के स्वर को भी मात कर रहे थे-

अभ्यभूयत वाहानां चरतां गात्राशिञ्जतैः।
वर्मभिः पवनोद्धूत राजतालीवनध्वनिः।।

(रघु./4/56)

रघु द्वारा पराजित शत्रुओं ने अपने शिरस्त्राण उतार कर उनसे शरण की याचना की अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः। प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम्।। (रघु./4/64)

कुमार एवं तारक असुर के सैनिक युद्ध की गहनता में जब परस्पर बिंध जाते थे तो उनके कवच भी विच्छिन्न होने लगते थे -

संग्रामानन्दवर्धिष्णौ विग्रहे पुलकाञ्चिते।
आसीत्कवचविच्छेदो वीराणां मिलतां मिथः।।

(कु.सं./16/5)

लौह कवच के निचले भाग में रूई लगाकर कवच के ध्वस्त होने पर भी शरीर सुरक्षा की व्यवस्था होती थी। कालिदास ने इसका बड़ा सुन्दर उल्लेख किया है -

निर्दयं खडभिन्नेभ्यः कवचेभ्यः समुत्थितैः।
आसन्व्योमदिशस्तूलैः पलितैरिव पान्डुराः।।

(कु.सं./16/6)

अन्य अस्त्रों का भी यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। रघुवंश में वर्णित 'श्रेपणी' नामक अस्त्र को आधुनिक गुलेल से समन्वित मान सकते हैं।

भिन्दिपालः-

रस्सियों का बना एक प्रकार का ऐसा अस्त्र होता था जिसके केन्द्र भाग में पत्थर आदि रखने के लिये चमड़े की थैली बनी होती थी। यह सिर के चारों ओर घुमाकर लक्ष्य पर पत्थर को फेंककर मारने के काम आता था। घुमाने के बाद रस्सी का दूसरा छोर छोड़ देते थे, जिससे कि थैले में रखा हुआ पत्थर निकल कर अपने गन्तव्य तक जा सके। गांवों में तथा आदिम जातियों के बीच आज भी इसका प्रयोग मिलता है। पर्वतीय जातियों के साथ संघर्ष में रघु की श्रेपणी द्वारा फेंके गये पत्थरों एवं बाणों के प्रहार से पर्वतीय क्षेत्र में अग्नि प्रज्जवलित हो उठती थी -

तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत्।
नाराच-क्षेपणीयाश्म निष्पेषोत्पतितानलम्।।

(रघु./4/77)

चक्र-

यह सदैव विष्णु अथवा उनके अवताररूप कृष्ण के आयुधों में रहा है। यह गोलाकार चक्र होता था जिसमें चार, पांच, आठ अथवा उससे भी अधिक आरियां होती थीं। कालान्तर में यह अकाली सिखों का भी प्रिय अस्त्र रहा है। रघुवंश में इसका उल्लेख मिलता है -

आधोरणानां गजसंनिपाते शिरांसि चक्रैर्निशितै क्षुराग्रैः।

(रघु./7/46)

गदाः-

परस्पर द्वन्द में गदा नामक आयुध का प्रयोग होता था। इसका गोलाकार भाग किसी छोटे धातु की छड़ में लगा देते थे। शिरोभाग या तो चकाकार या लोहे की उठी हुई धारियों का बना होता था। शत्रु का कपाल भाग ध्वंस करने के लिए यह अतीव उपयोगी अस्त्र माना जाता था। गदा प्रयोग में बड़े ही शारीरिक बल एवं सामरिक कौशल की अपेक्षा होती थी। महाभारत में भीम एवं दुर्योधन को गदा युद्ध में निपुण बताया गया है। बलराम गदा प्रहार के विशारद माने गए हैं। इसी का दूसरा प्रकार **"मुग्दर"** होता था। रघुवंश में कालिदास ने इसका वर्णन किया है- इसका गोलाकार भाग काफी पतला एवं नीचे का भाग क्रमशः बड़ा एवं गोल बना होता था। सामान्यतया युद्ध में इसका उतना प्रयोग नहीं होता जितना कि शारीरिक अभ्यास आदि में होता था। इसी कोटि का एक अस्त्र "लघुड़" का रघुवंश में उल्लेख मिलता है। एस. ए. सबनिस के विचार से 'लघुड़' भी एक प्रकार का गदा होता था जो प्रायः दो हाथ लम्बा होता था। "मूसल" घरेलू कामों में आने वाला उपकरण था।

परशुः-

रघुवंश में वर्णित परशु एक अर्धचन्द्राकार अस्त्र होता था। यह भी किसी यष्टि में लगाकर काटने के उपयोग में आता था।

वज्रः-

यह एक पौराणिक अस्त्र है जिसका सम्बन्ध सामान्यतया इन्द्र से मिलता है। वज्र प्रयोग करने के कारण ही इन्द्र को "वज्रिन" भी कहते हैं। रघु द्वारा इन्द्र के बाण की डोरी (प्रत्यंचा) काट देने पर कोधित इन्द्र ने पर्वतों के पंख काटने में सुप्रयुक्त अपने आभायुक्त वज्र का प्रयोग किया-

स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः प्रणाशनाय प्रबलस्य विद्विषः।
महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे।।

(रघु./3/60)

आश्चर्य है कि, कौटिल्य द्वारा वर्णित 'सर्वतोभद्र', 'जामदग्न्य', 'महासारयन्त्र', 'बहुमुरक' एवं 'पर्यजन्क' आदि अस्त्रों का कालिदास में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। 'नलिका' का उल्लेख अवश्य मिलता है। 'शतघ्नी' (100 लोगों को मारने वाली), भारी पत्थर फेंकने वाली तत्कालीन तोप जैसी चीज का नाम था। "परिघ" एक प्रकार का शहतीर का लट्ठा होता था जिसका प्रयोग किले की दीवार तोड़ने में किया जाता था। रघुवंश में अन्य शस्त्रों के साथ 'परिध' का भी उल्लेख मिलता है -

पादपाविद्धपरिधः शिलानिष्पिष्टमुद्गः।
अतिशस्त्रनरवन्यासः शैलरूग्णमतंगजः।।

(रघु./12/73)

जल सेनाः-

गुप्तकाल में एक विकसित जल सेना का अपना महत्त्व था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने समुद्र से समुद्र पर्यन्त अपने राज्य का विस्तार किया था जिसकी सीमा सुरक्षा केवल नौसेना द्वारा संभव थी। रघु ने कविशा नदी पर अपनी गज सेना का सेतु बनाकर कलिंग देश में प्रवेश किया था। बंग देश के राजा के साथ संघर्ष में रघु ने नावों का उपयोग किया था। यथा-

बङानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनौद्यातान्।
निचखान जयस्तम्भान् गंगास्रोतोन्तरेषु सः।।

(रघु./4/36)

अजन्ता आदि में चित्रित नौसेना के दृश्यों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

थल सेनाः-

सेना चार भागों में विभक्त थी पैदल सेना (पदाति), अश्व सेना, हस्ति सेना एवं रथ सेना। इस काल तक नौसेना एक स्वतंत्र शाखा के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकी थी। रघु की सेना अपने चार भागों के कारण "चतुरंगिणी" (चमू) कही गई है।

ययौ पश्चाद्ररथादीति चतुःस्कन्धेव सा चमूः।

(रघु./4/30)

'भेरी' अथवा तूर्यनिनाद' के साथ युद्ध की घोषणा होती थी और इसी लय पर सैनिक प्रयाण करते थे। राजा की अभिज्ञा उसके ध्वज से होती थी। रघु जब अपनी फहराती पताका के साथ पूर्व देश में पंहुचे तो सभी राजा वित्रस्त हो उठे थे-

सः ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनवर्हिषा।
अहितानिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः।।

(रघु./4/20)

विशिष्ट कोटि का सैनिक (पदाति आदि) शत्रु सेना के विशिष्ट कोटि के सैनिक के साथ ही संघर्ष करता था। यथा-

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरंगसादी तुरगाधिरूढम्।
यन्ता गजस्याभ्यपतन्गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्।।

(रघु./7/37)

स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ना परमादर्श था। विजित भूमि का शासन करते थे और विजय का उपभोग करते थे। युद्ध में मृत्यु होने पर वीरों को स्वर्ग मिलने की कल्पना थी -

युद्धाय धावतां धीरं वीराणामितरेतरम्।
वैलालिकाः कुलाधीशा नामान्यलमुदाहरन।।

(कु.सं./3/16)

कतिपय ऐसे नैतिक नियम थे जिनका पालन सभी सैनिकों के लिए अनिवार्य था। इसमें ब्राह्मण, स्त्री, अबोध, शिशु, कृषक एवं सामान्य नागरिकों को किसी प्रकार संत्रस्त्र न करने की व्यवस्था थी। राजा के दूत एवं परिचर आदि सर्वथा अवध्य माने जाते थे और उनका कहीं भी प्रवेश निषेध नहीं था। भयानक युद्ध के बीच भी घायल, बीमार, गिरे हुए अथवा अपंग या निरस्त्र सैनिक को नहीं मारा जाता था-

पूर्व प्रहर्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी।
तुरङमस्कन्धनिषण्णदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकाङ्क्ष।।

(रघु./7/47)

युद्ध में सैनिक शत्रु-सैनिकों के प्रति उत्तेजक एवं प्रतारणपूर्ण शब्दों का प्रयोग करते थे। कालिदास के काव्यों में इन्द्र एवं रघु के तथा कुमार एवं तारक के बीच हुए संवादों में इस प्रकार की शब्दावली देखने को मिलती है। रात्रि के समय युद्ध बंद हो जाता था और तब मृत-सैनिकों के सम्बन्धी अन्त्येष्टि आदि के लिये मृतक का शव ले सकते थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कालिदास की कृतियों में गुप्तकालीन अस्त्र-शस्त्रों का सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है।

संदर्भ संकेतः-

1. Studies in Indian Weapons and Warfare- G.N. Pant
2. Arms and Armor-Traditional Weapons of India- E. Jaiwant Paul
3. भारतीय अस्त्र-शस्त्र- जी.एन. पन्त
4. प्राचीन भारत की प्रशासनिक एवं राजनीतिक संस्थायें डॉ. कृ ण
5. कालिदास ग्रन्थावली रेवा प्रसाद द्विवेदी
6. कुमारसंभवम् श्री पं. प्रद्युम्न पाण्डेय